सच के साये में

कुसुम जैन

मूल्य-१५ रुपये

सच के साये मे

कुसुम जैन

प्रथम सस्करण १६८७

सर्वाधिकार कुसुम जैन

प्रकाशक
समायोजन
१६ बी, जवाहर लाल नेहरू रोड
कलकत्ता ८७

वितरक
हिन्दी पुस्तक एजेंसी
२०३, महात्मागाधी रोड
कलकत्ता ७

आवरण इमरोज, प्रेम कपूर

मुद्रक भागचन्द सुराना
सुराना प्रिंटिंग वर्क्स
२०५, रविन्द्र सरणी
कलकता-७

SUCH KE SAYE MEN
(Poetry)
By Kusum Jain 1987
Published by
Samayojan
19 B J L Nehru Rd Cal 87
Rs 15

सपना को जी लेने दो

चलते-चलते अगर
शाम हो जाये
तो हो लेने दो
थोडी देर ही सही
सच के साये में
सपनों को जी लेने दो

मेरी बात

हमेशा तो नही, पर जब भी मेरा सोच कविता बनता है, भाव शब्दों में ढलते हैं और कविता बन जाते हैं। अपने इर्द गिर्द बिखरी विसगतियां और सगतियां कभी मेरे एहसासो को खरोचती हैं, कभी झकझोरती हैं, कभी रुलाती हैं, कभी तोडती हैं, कभी जोडती हैं और कभी होले से जगा जाती हैं, तब यही एहसास ज्वालामुखी बन फट पडते हैं और झरना बन फूट पडते हैं। ये भाव, ये अनुभूतियां सिर्फ मेरी हैं, ऐसी बात नही। किसी भी सवेदनशील मनुष्य के सोच का हिस्सा हो सकती हैं।

मेरी यह निश्चित धारणा है कि मनुष्यमात्र के प्रति साहित्य की जवाबदेही है। अपनी इस जवाबदेही में वह जितना सशक्त और खरा होगा, उतना ही उदात्त उसका स्वरूप होगा।

'सच के साये में' कविता सग्रह आपके हाथो में न होता अगर इसके लिये गीतेशजी का इतना दृढ आदेश-युक्त आग्रह न होता। श्रद्धेय श्री विष्णु प्रभाकर की प्रेरणा एव दिशा निर्देश, ममतामयी श्रीमती सरला बिडला के स्नेहसिक्त आशीर्वाद ने मुझे निरन्तर प्रेरित उत्साहित किया है।

सग्रह प्रकाशन के लिये श्री मनमोहन ठाकुर ने भी कम हिम्मत नही दी। श्री प्रेम कपूर, श्री इमरोज और श्री ओम प्रकाश चौधरी का हर सभव सहयोग मुझे मिला। और अन्त में, उदारमना श्री रतनलाल डुगरिया, जो सर्वदा मेरा मार्ग प्रशस्त करते रहे हैं, के प्रति भी हार्दिक आभार।

मानवीय सवेदनाओं और मूल्यों के प्रति मेरी आस्था मुझे मेरी प्रतिबद्धता से डिगने नहीं देगी और सृजन से जोडे रखेगी।

—कुसुम जैन

शुभकामनाएं
—विष्णु प्रभाकर

कवियत्री कुसुम का यह पहला कविता संग्रह है। मैं नहीं जानता कि काव्य मर्मज्ञ इसके बारे में क्या कहेंगे। पर मेरे जैसे कविता प्रेमी पाठक के लिये तो यह संग्रह कवियत्री के भविष्य के प्रति आश्वस्त करने वाला है। उसके पास एक सुनिश्चित दृष्टि है और उसकी भाषा में भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता ही नहीं, उसमें एक सहज प्रवाह भी है।

उसके सपने थोड़ी देर के लिये ही सही सच के साये में जी लेना चाहते हैं। आज के विडम्बना भरे जीवन के हर क्षेत्र के सच को उसने पहचाना है। सरकार उसके लिये उस कैमरामैन की तरह है —

जो देश की रुकी प्रगति को/अपूर्व कुशलता के साथ/अपने आंकड़ो के गतिमान कैमरे से/गतिशील बना देने की/तकनीक बखूबी जानती है।

नारी के विडम्बना भरे जीवन की व्याख्या करती हुई वह पूछती है—

बहाव के साथ-साथ/बहते चले जाना ही/क्या नियति है औरत की/रिश्ते दर रिश्तों में/बंट कर विभिन्न सम्बोधना के साये में जीती। स्वयं बन जाती है मात्र एक परछाई।

मां बन कर/बहू बन कर/पत्नी बन कर/यहां तक कि वेश्या बन कर तो जी सकती है। लेकिन अपनी पहचान/अपनी मर्यादा के साथ/औरत बन कर जीने का/अधिकार नहीं है उसे।

आज की नारी का प्रतीक बन गयी शाहबानो ने जब-जब अपने इंसान होने के अधिकारों को जताया और

मागा है तब-तब उसे मर्द की मर्दानगी ने जीत कर भी हारने को विवश कर दिया है।

वह आज के आतकभरे जीवन को भी पहचानती हैं और भ्रष्टाचारियों की किलेबन्दी को भी/दर्द की व्याख्या भी वह कर सकती है। यह दर्द ही तो है, जो विद्रोह बन/अन्याय के खिलाफ लडता है।

लेकिन कवियत्री का सच मात्र सपने ही नहीं देखता। उसे पहचानना भी चाहता है। सच उभर लिये एक आग बन जाता है। एक ऐसी आग —

जो आदमी में जिन्दा होने का/ऐसा खूबसूरत एहसास भरती है, जो मरने के बाद भी/आदमी को जिन्दा रखता है।

वह सुखद सपने भी देखती है आदर्श भरे सपने, धरती पर उतर कर आकाश को विदा करने के सपने, जिन्दगी से अगली सौगात मिलने के इन्तजार के सपने, आने वाले वसन्त की प्रतीक्षा के सपने

अब तो बस/आने वाले वसन्त की प्रतीक्षा में/अपनी हिलती जडो को/उखडने से बचाये/एक ठूठ खडा है/ चुपचाप बेजान।

प्यार का दीपक भी जलाती है वह। कैसी आशा है उसकी जो मौत को भी जिन्दगी की दुआए मागने को विवश करती है/वह विडम्बनाओ से घबराती नहीं बल्कि आह्वान करती है —

आओ लिखें/एक नई बाइबल/गढ़ें एक ऐसा मसीहा/ जो नेकी की खातिर/झूठ को सलीब पर टांग दे—और— वर्जनाओ के पिंजरे में कैद/तमाम पत्र/उड कर चले जायें/ दूर बहुत दूर/और ज़िन्दगी बन जाये एक खूबसूरत/ आजाद कविता।

लेकिन गलतफहमी न हो, वह सपनो के माया जाल में खो जाना नही चाहती—

कि यथार्थ/सिर्फ यथार्थ/यथार्थ ही है/आज व्यक्ति का आदर्श

इसलिये

अपनी कमजोरियो को नकार/मजबूरियो का हवाला/ लेकर कोसता है/जब भी भाग्य को/नियति को/विधाता को/तो हस पड्ती हू मै/सोचती हू/अपने अपराधो के वोध का/एक अस्तित्वहीन सत्ता पर लाद/अपराध भाव से/ मुक्त हो लेने का/कितना आसान रास्ता/खोज लिया है लोगो ने।

कहीं कही कवियत्री ने बडे सुन्दर चित्र उकेरे हैं। जैसे 'क्या सुनी है कभी तुमने' शीर्षक कविता में। उसे विश्वास है कि इन्सानियत की हम कितनी भी हत्या कर दें पर—

देखना एक दिन/तोड कर रख देगी आतक का सीना/और अन्तर से फ़ूट पडेंगे मीठे पानी के/असख्य झरने

यही अदम्य और सार्थक आशावाद कवियत्री की शक्ति बने और वह हमें और सक्षम रचनायें दे, इसी विश्वास के साथ मेरी शत-शत शुभकानाए उसे।

सूची | पृष्ठ

दर्द ही तो है

यह दर्द ही तो है
जो आंसू बन
आंखों से बरसता है,
यह दर्द ही तो है
जो रूमाल बन
आंसुओं को पोंछता है,
यह दर्द ही तो है
जो हिम्मत बन
लड़ने की ताकत देता है
यह दर्द ही तो है
जो विद्रोह बन
अन्याय के खिलाफ लड़ता है।

नियति

बहाव के साथ साथ
बहते चले जाना ही
क्या नियति है औरत की ?
रिश्ता दर रिश्ता में
बंट कर
विभिन्न सम्बोधनों
के सायों में जीती
स्वयं बन जाती है
मात्र एक परछाई
भूल जाती है वह
अपनी अस्मिता
अपना सम्मान
कर्तव्य का
भारी भरकम मूसल
कुचल डालता है
उसके भीतर की औरत को
और शेष बच रहती है
एक बेजान कठपुतली
जिसे पुरुष का अहम्
नचाते-नचाते
जताता रहता है
कि उसके द्वारा
खींची गयी लक्ष्मण रेखा में
मां बनकर
बहू बन कर

पत्नी बन कर
यहाँ तक कि
वश्या बन कर ता
जी सकती है वह
लेकिन अपनी पहचान
अपनी मर्यादा के साथ
औरत बनकर जीने का
अधिकार नहीं है उसे
एक परछाई
एक कठपुतली
एक बहाव
ही तो है
नियति उसकी

इसीलिए तो

क्या
जीत कर भी
हार जाती है
शाहबानो हर बार ?
जो बेची जा सके
जो खरीदी जा सके
जो दान में भी दी जा सके
उस जानदार वस्तु का
नाम है शाहबानो।
जब भी शाहबानो को
अपने जिन्दा होने का
एहसास हुआ है
जब-जब भी शाहबानो ने
अपने अधिकारों को
जताया और मांगा है
तब तब उसके
खरीदारों और दाताओं की
घायल मर्दानगी
पूरी ताकत के साथ
उस पर
तब तक
वार करती रहती है
जब तक कि
वह फिर से

अपने जिन्दा रहने के
एहसास को
भूल न जाये
इसीलिये तो
जीत कर भी
हार जाती है
शाहबानो हर बार

साथ-साथ

नारी के
त्याग को
सहनशीलता को
महिमा-मडित करने वाला
पुरुष का दर्प
टूट कर
बिखरने लगा है।
सुविधाओं की
आवश्यकताओं द्वारा
आविष्कृत
सीता-सावित्री के
आदर्श चरित्रों की
आरोपित मीनारें
हिलने लगी हैं।
क्योंकि
अस्मिता की कीमत पर
मिली प्रशंसा की
चिन्दी-चिन्दी करने वाला
नारी का आत्मविश्वास
आत्मनिर्भर हो
उठ खड़ा हुआ है
चलने के लिये
साथ-साथ

धब्बो पर धब्बे बनते है

नमित मुद्रा मे
स्थिति को यथावत
स्वीकारने का विनीत भाव।
जाति बोध के अहकार को
सस्कारो मे
पोसने की जडता
बना देती है
वर्जनाओ की ऊंची सी बाड़
और हमारे लकवा-ग्रस्त एहसास
अपने-अपने घरो की
खिडकियो से
देखते रहते है
बदसलूक
बेइन्तहा ज्यादतियो को
गोलियाँ चलती है
और ज़िन्दगी मौत मे
तब्दील हो जाती है।
गर्म ताजा खून
सडको पर बिखरा
बदल जाता है
काले धब्बो मे।
धब्बो पर धब्बे
बनते है
चमकती है तलवारे
चलते है त्रिशूल
धब्बो पर धब्बे
बनने का

एक बर्बर सिलसिला
इन्सानियत का काटता है
अज्ञान और अन्धविश्वास की
दुनालियों में भरी
धर्म की गोलियाँ
छेदती हैं इन्सानियत का,

उन्नत में रहते हुए लोग
अपनी सवदना
अपने ज़मीर का
अमृत छका
जनेऊ पहना
गुरुद्वारों और मन्दिरा में
दफ़ना देते हैं।

धर्म के उन्मादिया की
वहशियत खेलती है
बेगुनाह जिन्दगी से।
धरती पर वह निकलता है
ताजा खून
जिसे मजहब ने
हिन्दू सिख मुसलमान बनाया
पैदा किया
इन्सान इन्सान में फर्क।
फर्क की यही दीवार
दिल और दिमाग में बीच
आदमी और आदमी के बीच
दुश्मनी का खजर बन
रगती जाती है
निहत्थे निर्दोष खून में
धरा पर धब्बे
बनते चले जाते हैं
इन्सानियत की पाकीज़गी पर

क्या सुनी है कभी तुमने

दिन ढलने के साथ
पेडा के पत्तो पर
प्यार-गीत बन
जब धडकती है खामोशी
अपने अनकहे अन्दाज में
पलको पर थोडा सा ठहर
कह जाती है प्रेम की
अनगिनत अमर कहानिया
तब खामोशी
सर्द रात में
रजाइयो के नीच
जागती गर्माहट सी
बहुत प्यारी लगती है
लेकिन जब
घरो के दरवाजा
खिडकिया पर
खौफ की सिटकनी म सिमट
कर्फ्यू बन
शहरो की रौनक को
निगल जाती है तो
बहुत भयावह लगती है।
सुनसान बेचैन रात
दिन को धक्का ने
सन्नाटे की खोह से
निकालती है जैसे-तैसे।
और दिन

लावारिस जख्म बन
कराहता है हर रोज।
क्या सुनी है तुमने
कभी जख्मी दिन की
वह खामोश कराह ?
सुनकर अनसुनी कर
खो गये हो
अपनी ही बनाई
व्यस्तताओं की भूल-भूलैया में।
गरजी रिश्तों के
दलदली पोखर में धंस
भूल गये हो
कि हर एक इन्सान
जुड़ा है
हर एक दूसरे से
इन्सानियत की
उस सांधी सी मिट्टी से
जिसे धरती और आसमान
हवा, आग और पानी ने
मिल कर गूंथा है।
खून से लथ-पथ
दिन की वह खामोश कराह
देखना एक दिन
तोड़ कर रख देगी
आतंक का सीना
और अन्तर से
फूट पड़ेंगे मीठे पानी के
असंख्य झरने

आतक के इस शहर में

व सरे आम
काटते है आदमी
बांटते हैं नफरत
इन्सानियत का कटना
नफरत का बटना
आतक के इस शहर में
आम बात हो गयी है
नींद खौफनाक जगल में
गुम हो गयी है ।
मौत शरीरों का
ताज़ा खून पी-पीकर
डाकिन बन गयी है
खिडकियों और दरवाजो की
साक्लों को चढाते रहना
आतक के इस शहर में
उगलियो की आदत बन गयी है

आदर्श

हर टूटन के बाद
जन्म लेता है
एक नया व्यक्तित्व
जैसे एक विश्वास के
टूटने पर
दूसरा बनता है।

क्या आदर्श
सिर्फ एक ख्वाब है
या असफल, अव्यावहारिक
व्यक्तित्व की कल्पना ?
आदर्श पर चल कर
मैं अब
तुम्हारी सीढ़ी तो
बन सकता हूँ, पर
स्वयं कोई आदर्श नहीं।

जान गया हूँ अब
कि यथार्थ
सिर्फ यथार्थ
यथार्थ ही
है आज व्यक्ति का
आदर्श

कितना आसान रास्ता

चेहरे दर चेहरे
में कैद
एक लाचार भाव
अपनी कमजोरियों को नकार
मजबूरियों का हवाला
देकर कोसता है
जब भी
भाग्य को,
नियति को,
विधाता को
तो हम पड़ती हूँ मैं
सोचती हूँ
अपने अपराधों के बोझ को
एक अस्तित्वहीन
सत्ता पर लाद
अपराध भाव से
मुक्त हो लेने का
कितना आसान रास्ता
खोज लिया है लोगों ने

लेन-देन

देने के समय
मेरी आत्मा
बेईमान बनिये सी
बगलें झाकने लगती है
लेकिन
लेने के समय
बेशर्म हो
लाशो से भी
वसूल लेती है
अपना हिसाब

अकाल

सूखने लगी हैं
भावनाओं की भरी हुइ
नदिया
और लोग
बुझाने लगे हैं खून से
अपनी प्यास ।
बदहवास म
सोचती हूँ
यह
कैसा अकाल है
और
क्यो छाया है ?
शायद
अकालग्रस्त रिश्तों ने
सोख ली है
आदमी की
आस्था
सवेदना
करुणा

किलेबन्दी कुछ ऐसी हुई

इस शहर में
किलेबन्दी कुछ ऐसी हुई है
कि इमानदारी का
भीतर घुस पाना नामुमकिन है।
वे सारे साथी
जो इमानदारी का
दम भरते थे कभी
बेइमानी के साथ हो
ऊचे ऊचे ओहदो पर जा विराजे हैं
पहरेदार जो तैनात थे
इमानोधरम के साथ
इमानदारी की रक्षा के लिये
अब उसे
पहचानते तक नही
अब वह
किले के बाहर
खडी है अकेली बेबस
एक औरत की तरह
अपने पर
अपना ही पहचान-पत्र लगाये कि
मै इमानदारी हूँ
पेट भरने के लिये
दो-चार पैसे दे दो
मुझे मेरे माइ बाप

आहत होता है

उन तथाकथित
कहानियो में
कविताओं में
लेखो में
शब्दा में
एक उथली सी वदना
हर बार
चिडिया की आख
वेधे विना ही
सर से गुजर जाती है
किंकर्तव्यविमूढ है द्रोणाचार्य
अनुत्तीर्ण होकर भी
उत्तीर्ण हुआ है अर्जुन
हां, हर बार ही तो
आहत होता है
विश्वास का कर्ण।

सलीब पर टगे मूल्य

मूल्यहीनता की कैंची
काटती है दिन रात
सवेदना की उस डोर को
जो हमें एक दूसरे के होने का
सुखद एहसास देती है।

मूल्यहीनता की कुदाली
खोदती है दिन-रात
सद्भाव की उन जडो को
जिन पर चैन ओ अमन के
सदाबहार फूल खिलते हैं।

मूल्यहीनता के खजर
चीरते हैं दिन-रात
इन्सानियत की उस पहचान को
जो प्यार की लौ उन
आस्थाओ के दीप जलाती है।
मूल्यों को सलीब पर
टगना है आज भी
तो हमारा अस्तित्व खोटे सिक्के सा
होकर भी
नहीं होना तो नहा ?

सोचती हू

सोचती हू
सत्य को ही
हर बार
क्या टगना होता है
सलीब पर ?
आओ लिखें
एक नई बाइबिल
गढें एक
ऐसा मसीहा
जो नेकी की खातिर
झूठ को
सलीब पर टाग दे।

विरह

विरह
ठंड की सर्द रात में
वृद्ध भिखारी सा
ठिठुरता रहा
सिसकता रहा
चुपचाप

खुशी

हंसी का लिबास पहन
हवाओं पर लद
झूल जाती है
टहनियों पर
शाखाओं पर
पत्ते-पत्ते पर

सुख

पीपल की छांव बन
तपती दोपहर में
झलता है
शीतल पवन
मन्द-मन्द

दुख

अनाथ बालक सा
अभागा उपेक्षित
भटकता है निरन्तर
एक अभिभावक
एक घर की
खोज में

सच तो यह है कि

सच तो यह है
कि सच एक आग है
जो आदमी में
जिन्दा होने का
ऐसा ख़ूबसूरत
एहसास भरती है
जो मरने के बाद भी
आदमी को
जिन्दा रखती है

जब तुम पास नहीं होते

हवाओं में तैरती
एक उदास महक
तुम्हारे न होने का
एहसास भर देती है
शाम के धुँधलके
और गहरा जाते हैं
सिमटने लगते हे तब
यादों के सतरंगी साये।
अँधेरा पूरा उतरे
उससे पहले ही
जल उठता है
तुम्हारे प्यार का दीपक!
और मेरे आस-पास
मौन प्रतीक्षा के
एकाकी पल धीरे से
दरकने लगते हैं।

तुम्हारे बिना

उदासी के कोहरे में
चुपचाप लिपटा मैं
तुम्हारे बिना
बन गया हूँ
एक बेजान पुतला।
यादों की कचनजगा
इन्द्रधनुषी ओढनी ओढे
दुल्हन सी सजी सवरी
दिखा जाती है
तुम्हारा चहरा

पर तभी
उठता है कोहरे का
घनेरा निष्ठुर बादल
और ढाँप लेता है तुम्ह
कोहरे का एक टुकडा
देखो
मेरे इर्द-गिर्द
फिर सिमट आया है

मौत भी मागने लगे

खुशियो से
गूथ दू म
हर पल तुम्हारा
चन्दन सा
महके
ये जीवन तुम्हारा
चलते रहे साथ
कदम दर कदम
बस यू ही
कि लौट जाये
मौत भी
दहलीज पर
आकर तुम्हारे ।
देख कर
यह अथाह
अपनत्व
मौत भी
मागने लगे
जिन्दगी की दुआए ।

सिखाऊंगी तुम्हें

उदासी के नन्हे से टुकड़े
कहां छुपाऊं
कैसे छुपाऊं तुम्हें ?
हंसी के ताले में
बन्द करके भी
नहीं रख सकी नन्ही तुम्हें
क्यों झलक जाते हो
मेरी हंसी में
मेरे ठहाकों में
मेरी आंखों में ?
सुनो
जब मैं
बिल्कुल अकेली रहूं
तब आना,
चले आना चुपचाप
और करना
सैकड़ों शिकायतें
उस वक्त
सिखाऊंगी तुम्हें
हंसना-हंसाना
झूमना-इठलाना।

तकनीक

सरकार
एक बहुत ही दक्ष
कैमरा मन है
जो देश की
रुकी हुइ प्रगति का
अपूर्व कुशलता के साथ
अपने आकडो क
गतिमान कैमरे से
गतिशील बना देने की
तकनीक बखूबी जानती है।

उड़ती रहे निर्द्वन्द्व

वर्जनाओं के पिंजरे में कैद
तमाम पल
उड़ कर चले जायें
दूर बहुत दूर
और समय के असीम आकाश में
जिन्दगी
उन्मुक्त पक्षी बन
उड़ती रहे निर्द्वन्द्व ।

आने वाले वसन्त की प्रतीक्षा में

तुम्हारी और मेरी
जिन्दगी को लूटने की
उनकी साजिशें
कामयाब होने को है,
चोट खाते-खाते जड़ें
ढीली हो चुकी हैं
कही कोइ पत्ता नहीं
टहनियों पर
फूल तो न जाने
कब के झर चुके हैं
अब तो बस
आने वाले वसन्त की
प्रतीक्षा में
अपनी हिलती जडो को
उखड़ने से बचाये
खड़ा है एक ठूंठ
चुपचाप बेजान।

वापसी

न जाने कब
न जाने कैसे
एक दिन
उतर आया मुझमें
सारा का सारा आसमान
मैं
नन्हा नन्हा चिड़िया के
परों को थपथपाते
उड़ती गयी
ऊपर और ऊपर
चांद और सितारों के बीच
भटकती रही
खोजती रही।
शायद हो
उस पार भी
गेहूं के दाने की तरह
सप्त-चिरी हुई
एक नन्ही सी खूबसूरत धरती
लेकिन शून्य के
उस अभेद्य साम्राज्य में
मेरी तलाश की
आवाज लौट आती
हजारों हजार प्रतिध्वनियां में
मेरे ही पास बारम्बार

मैं

धीरे-धीरे उतरती हूँ
चाँद और सितारों से नीचे
नन्ही-नन्ही चिड़िया के
परों की थपथपाते
धरती की ओर।
धरती के स्पर्श का
वह प्यारा सा एहसास—
जैसे नन्हा सा शिशु
खड़ा हुआ हो
अपने आप
अपने ही पैरों से
पहली बार।
धरती की मिट्टी
हाथों में समेट
चूमती हूँ बार बार
और माथे से लगा
मिट्टी सने हाथों से
जाते हुए आसमान को
देती हूँ विदा

जिन्दगी नही है अब

जिन्दगी
नही है अब
कोई शिकायत
मुझे तुमसे
बाटे हैं
इफरात में
तुमने मुझे—
दु ख भी,
सुख भी,
हां, तभी तो
समझा मैने
कितने कीमती हैं आसू
कितनी अनमोल है हँसी

जिन्दगी
अपनी सौगातें
बाटने के लिये
तुम्हें भी तो चाहिये
जिन्दा-दिल इन्सान।
तुम्हारी सौगातों
ने ही तो
जिन्दा रखा है
मुझ अब तक।
हर बार

हर सौगात के वाद
शुक्रिया कर
सिर माथे पर
लगाया है तुम्हें
हँसी या आसुओं से भरी
अगली सौगात की प्रतीक्षा में

आस्थाओं के बीज

मेरी झोली में
भरे हैं ढेर से
आस्थाओं के बीज ।
उन बीजों को
अपनी मुट्ठियों में भर
छिड़कते चलना तुम,
सुनो ! मेरे पास
एक तेज धारदार
विद्रोह की हसिया भी है,
जहाँ कहीं भी
राह में
दिखाई दे तुम्हे
बारूद की कोई फसल ।
तेज धारदार हसिया से
काट कर
जड़ सहित देना उखाड़
और मेरी झोली से
भर लेना
मुट्ठी मुट्ठी भर
आस्थाओं के बीज
छिड़क देना
सूनी सी उस धरती पर ।
चलते चलते
न तुम थकोगे
और न ही
खत्म होंगे कभी
मेरी झोली में भरे
आस्थाओं के बीज

एक बागी दहक

शब्द जब भी
विशेषणों की पालकी में
ढोते हैं आततायियों को
तो बन जाते हैं
जर खरीद गुलाम
गुलाम शब्दों से
लिखी नहीं जाती
किसी भी देश के
लोगों की
आजाद तक्दीर
कोर्निश करते करते
झुकने लगी है
गुलाम शब्दों की कमर
और झूलने लगी हैं
अर्थों की झुर्रियां
इन्हीं झुर्रियों में
अवशेष है अभी भी
एक आकुल चिंगारी
जिसकी बागी दहक ही
हर हाथ में लिखेगी
मुक्ति की तक्दीर !

"कवियत्री कुसुम का यह पहला कविता
मै नही जानता कि काव्य मर्मज्ञ इसके बारे में
पर मेरे जैसे कविता प्रेमी पाठक के लिये तो
कवियत्री के भविष्य के प्रति आश्वस्त करं
उसके पास एक सुनिश्चित दृष्टि है और उसव
भावों को अभिव्यक्त करने की क्षमता ही
एक सहज प्रवाह भी है। "

—विष